

1. अठारहवीं सदी में भारत

आम तौर पर यह धारणा प्रचलित है कि इस शताब्दी में मुगल साम्राज्य के पतन और विघटन के परिणामस्वरूप राजनीतिक दृष्टि से अराजकता फैल गई थी। ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपने व्यापारिक हितों की रक्षा के लिए बंगाल को जीता और कालांतर में एक ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था कायम की जिसने भारतीयों को अराजकता के स्थान पर कानून और व्यवस्था तथा सुरक्षा का वातावरण प्रदान किया। सामाजिक दृष्टि से 18वीं शताब्दी के समाज को जड़ और अनेक बुराइयों तथा विभाजित प्रवृत्तियों को माना गया। आर्थिक दृष्टि से इस तथ्य पर बल दिया गया कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद ने व्यापार एवं आर्थिक संबंधों में कोई भी परिवर्तन नहीं किया। इन अवधारणाओं पर कालांतर में प्रकट किए गए विचारों के आधार पर 18वीं शताब्दी को अब अंधकारमय युग नहीं माना जाता है।

राजनीतिक दशा

18वीं शताब्दी की राजनीति में तीन प्रमुख प्रवृत्तियां देखी गईं। मुगल साम्राज्य का पतन और विघटन उत्तराधिकारी राज्यों की स्थापना, अंग्रेजों द्वारा भारत से उपनिवेशवाद की स्थापना। 1707 ई. में औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल साम्राज्य के पतन और विघटन की प्रक्रिया तेज हो गई। अयोग्य उत्तराधिकारियों, आर्थिक कठिनाइयों, दरबारी राजनीति, विदेशी हमलों और स्वतंत्र राज्यों की स्थापना से मुगल साम्राज्य का आकार संकुचित हो गया और इससे इसकी शक्ति क्षीण हो गई। वास्तव में मुगल सत्ता केवल दिल्ली तक ही सीमित रह गई थी। मुगल राजनीति में मराठों का लगातार हस्तक्षेप हो रहा था। अहमदशाह अब्दाली के हमलों ने इस सत्ता को सफल चुनौती दी। उसने अपने अधिकारियों को पंजाब में नियुक्त भी किया, परंतु जब मराठों ने उत्तरी भारत पर कब्जा करने के उद्देश्य से अब्दाली द्वारा नियुक्त अधिकारियों को हटा दिया, तब युद्ध की स्थिति उत्पन्न हो गई। 14 जनवरी, 1761 को जब पानीपत का तीसरा युद्ध शुरू हुआ। जो अहमदशाह अब्दाली और मराठों के बीच लड़ा गया था। इसमें मराठों की हार हुई। इस युद्ध से लाभ न तो विजेता पक्ष को हुआ और न ही पराजित पक्ष को इससे भारतीय राजनीति में एक शून्यता की स्थिति पैदा हो गई। मराठों की हार ने यह साबित कर दिया कि वे मुगलों का स्थान लेने के लिए सक्षम नहीं थे। इस स्थिति का लाभ अप्रत्यक्ष रूप से अंग्रेजों को हुआ। बंगाल पर अपना अधिकार स्थापित करने के बाद उन्होंने एक-एक करके भारतीय राज्यों को हराना शुरू कर दिया।

इस काल के भारतीय राज्यों की स्थापना की प्रक्रिया के आधार पर तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है-

1. मुगलों द्वारा नियुक्त प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा स्वतंत्र राज्यों की स्थापना।
2. मुगल सत्ता को सफल चुनौती देते हुए अनेक व्यक्तियों और समुदायों द्वारा स्वतंत्र राज्य की स्थापना।
3. सर्वथा स्वतंत्र राज्यों की स्थापना।

प्रथम श्रेणी में बंगाल, अवैध और हैदराबाद को रखा जा सकता है। बंगाल में जब मुगलों द्वारा मुर्शिदकुली खां को नियुक्त किया गया था। तो उसने आंतरिक विद्रोहों को दबाने के साथ-साथ केन्द्रों को नियमित रूप से नजराना देना प्रारंभ किया था। समय के साथ उसने स्वयं को स्वतंत्र नबाव घोषित कर दिया। अवध की स्थापना सआदत खां ने की थी। वह अवध में स्थानीय शक्तिशाली वर्गों की सहायता से स्वतंत्रराज्य की स्थापना करने में सफल हुआ था। उसने भी बाहरी तौर से मुगल अधीनता को स्वीकार किया, परंतु वास्तविक रूप में स्वयं को स्वतंत्र कर लिया। हैदराबाद का संस्थापक आसफशाह निजाम-उल-मुल्क मुगल शासन में प्रमुख वजीर था। वहां की राजनीति से असंतुष्ट होकर उसने हैदराबाद में स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

मुगल सत्ता के खिलाफ अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ में अनेक किसान विद्रोह हुए। समय और परिस्थितियों का लाभ उठाते हुए अनेक वर्गों ने स्वतंत्र राज्यों की स्थापना की। इनमें से एक शक्ति मराठों की थी। प्रथम तीन पेशवाओं (1713-61) के अधीन मराठा शक्ति का बहुत अधिक प्रसार हुआ था। कुछ समय के लिए ऐसा लगा था कि उत्तरी भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करने वाले मराठे शायद मुगलों का स्थान ले लेंगे। परंतु पानीपत के तीसरे युद्ध (1761) में मराठों की पराजय के साथ ही उनका अस्तित्व केवल प्रांतीय स्तर पर सीमित होकर रह गया। दिल्ली के समीपवर्ती इलाकों में जाटों ने मुगल सत्ता के खिलाफ विद्रोह किए। चूड़ामण और बदन सिंह ने भरतपुर में जाट राज्य की स्थापना की। अनेक स्वतंत्र राज्यों की स्थापना भी इसी शताब्दी में हुई। केरल और अंबर ऐसे ही राज्य थे इनमें सबसे महत्वपूर्ण मैसूर राज्य था। इसकी स्थापना हैदर अली ने की थी। उसने और उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने मैसूर राज्य को शक्तिशाली बनाया।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि मुगल साम्राज्य के पतन के साथ अनेक उत्तराधिकारी राज्यों की स्थापना हुई। उनकी राजनीतिक व्यवस्था से यह स्पष्ट होता है कि मुगल व्यवस्था के अनेक तत्वों का समावेश किया गया था, परंतु इसी के साथ नए परिवर्तन भी देखे गए। मुगल सत्ता कमजोर हो चुकी थी फिर भी उसकी प्रतिष्ठा को अनेक राज्यों ने स्वीकार किया। मुगल केन्द्र द्वारा नियुक्त अधिकारियों का सम्मान किया जाता था। केवल मैसूर के शासकों ने ही स्वयं को सम्राट घोषित किया। अधिकांश शासक स्वयं को नबाब ही कहते रहे। राज्यों में मुगलों की तरह, आमदनी का प्रमुख साधन भूमिकर ही था और इससे किसानों का शोषण पहले की तरह ही हुआ। मराठों का वित्तीय आधार चौथ और सरदेशमुखी जैसे करों पर टिका हुआ था। इसके कारण राज्य की आमदनी स्थायी नहीं थी।

केन्द्रीकृत मुगल साम्राज्य के स्थान पर अनेक स्वतंत्र राज्यों की स्थापना तो अवश्य हुई, परंतु इनमें परस्पर सहयोग की भावना नहीं थी। उदाहरणार्थ अपने राज्य विस्तार और राजनीतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए ये राज्य परस्पर संघर्षरत रहे। मराठों ने 1740 ई. के दौरान बंगाल और भारत के दूसरे हिस्सों पर लगातार आक्रमण करके उन्हें अपने विरुद्ध कर लिया था। परिणामस्वरूप पानीपत का तीसरा युद्ध उन्हें अकेले ही लड़ना पड़ा। इसी तरह निजाम ने मराठों की शक्ति को कमजोर करने का प्रयास किया और जब आंग्ल-मराठा संघर्ष हुआ तो उसने मराठों की सहायता नहीं की। इस प्रकार की राजनीति इस बात की सूचक थी कि उत्तराधिकारी राज्य मुगलों का स्थान लेने में असमर्थ थे।

18वीं शताब्दी को राजनीति की एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति भारत में अंग्रेजों के उपनिवेश की स्थापना से जुड़ी हुई। व्यापारिक मुनाफे से प्रेरित कंपनी ने अपने राजनीतिक उद्देश्यों को बहुत जल्दी स्पष्ट कर दिया था। अंग्रेजों ने प्लासी और बक्सर के युद्धों के बाद स्वयं को राजनीतिक शक्ति घोषित किया। क्लाइव ने 1765-1772 ई. के बीच द्वैध शासन-व्यवस्था अपनाई इसमें कंपनी ने दीवानी अपने अधीन कर ली और निजामत कर नवाब पर ही छोड़ दिया। 1772 ई. में गवर्नर के रूप में वारेन हेस्टिंग्स ने इस व्यवस्था को समाप्त कर दिया। इसी के साथ अंग्रेजों ने बंगाल पर अपना अधिकार घोषित कर दिया। वेल्लेजली गवर्नर जनरल बनकर भारत आया तो उसके शासन काल में अंग्रेजी उपनिवेश का विस्तार किया गया। अनेक इतिहासकारों ने यह स्पष्ट किया है कि उसकी नियुक्ति ही भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तार करने के लिए हुई थी। उसने सहायक संधि व्यवस्था अपनाकर अनेक भारतीय राज्यों की हड़प लिया।

अपने आधिपत्य को मजबूत करने के लिए अंग्रेजों ने प्रशासन की ओर भी ध्यान दिया। इसकी रूपरेखा 1773 में पारित रेगुलेशन एक्ट में प्रस्तुत की गई। गवर्नर जनरल का नया पद बनाया गया और उसकी कौंसिल एवं सुप्रीम कोर्ट की स्थापना की गई। जिस नौकरशाही का विकास किया गया वह पूरी तरह से यूरोपीय थी, परंतु भारतीयों की समस्याओं और स्थानीय स्थिति को जानने के उद्देश्य से हेस्टिंग्स ने अंग्रेज अधिकारियों को भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया। 1784 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना की गई। प्रारंभ से ही अंग्रेजों ने भूमिकर व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया। शुरू में वारेन हेस्टिंग्स ने पंचवर्षीय और सालाना योजनाएं लागू कीं। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने स्थायी बंदोबस्त (1793) लागू कर भूमिकर व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन किए।

इस प्रकार अंग्रेजों ने 18वीं शताब्दी में भारत को अपने उपनिवेश में बदल दिया। शासकों का उद्देश्य अपने देश के हितों की रक्षा करना था। प्रारंभ से ही जिस प्रशासन को जन्म दिया गया, वह भारतीयों पर ऊपर से थोपा गया था। जातीय श्रेष्ठता में विश्वास रखने वाले अंग्रेज शासकों की भारतीयों या उनकी समस्याओं के प्रति कोई दिलचस्पी नहीं थी।

आर्थिक दशा

18वीं शताब्दी की अर्थव्यवस्था में जो परिवर्तन के तत्व देखे गए उनका आधार अंग्रेजों द्वारा स्थापित उपनिवेशवाद था। एक मत के अनुसार मुगलकालीन अर्थव्यवस्था में पूँजीवादी तत्व विद्यमान थे। कृषि और गैर-कृषि दोनों ही क्षेत्रों में बाजार के लिए उत्पादन होता था। श्रम का प्रयोग दोनों ही क्षेत्रों में वेतन देकर किया जाता था। इस तरह मुद्रा अर्थव्यवस्था विकसित हो चुकी थी। आय का प्रमुख साधन भूमिकर था और शासक वर्ग में इसका विभाजन आर्थिक संबंधों को प्रभावित कर रहा था। विदेश व्यापार भी विकसित था और मुगलकालीन अर्थव्यवस्था में वाणिज्यिक पूँजी भी उपलब्ध थी। इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या मुगलकालीन अर्थव्यवस्था औद्योगिक पूँजीवाद को जन्म देने में सक्षम थी। इसी के साथ जुड़ा हुआ प्रश्न यह भी है कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद ने 18वीं शताब्दी की अर्थव्यवस्था को कहां तक प्रभावित किया है। इस अवधारणा का खंडन अनेक इतिहासकारों ने किया है। वास्तव में मुगलकालीन अर्थसामंती अर्थव्यवस्था में पूँजीवाद का विकास इसलिए नहीं हुआ क्योंकि भारत को उपनिवेश में बदल दिया गया।

नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के हमलों से दिल्ली, आगरा और लाहौर जैसे शहरों का पतन हुआ था परंतु बहुत जल्दी ही इन स्थानों ने पहले जैसी स्थिति प्राप्त करने का प्रयास किया। उत्तराधिकारी राज्यों में केंद्र बने। राज्य की आमदनी का प्रमुख साधन कृषि ही रहा परंतु अंग्रेजों ने इस ओर विशेष ध्यान दिया। उनका उद्देश्य अधिक से अधिक भूमिकर प्राप्त करके उसे अपने व्यापार में लगाना था। इस शताब्दी में भी ऐसा व्यापारी वर्ग बना रहा जिसका जातीय पेशा व्यापार था। मद्रास के समुद्रवर्ती स्थानों में चेट्टी जाति, गुजरात के समुद्री तट पर जैन, हिन्दु एवं बोहरा व्यापारी, राजस्थान के मारवाड़ी बनिए, बंगाल के वणिक और केरल के सीपा प्रमुख व्यापारी वर्ग थे। जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने अपनी व्यापारिक गतिविधियों को भारत में फैलाया तो इन व्यापारियों के साथ भी उन्होंने संबंध स्थापित किए।

कंपनी राजनीतिक शक्ति के रूप में बदल गई तो भारतीय व्यापारियों की स्थिति में बहुत अधिक अंतर आ गया। ये भारतीय व्यापारी साधारण व्यापारी नहीं थे इनके पास अपनी पूँजी भी थी और अर्थव्यवस्था में उनका बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। ये व्यापारी फसलों को खरीद कर किसानों को जो धन उपलब्ध करवाते थे उससे राज्य को नकद राजस्व प्राप्त होता था। ये राजस्व को धन में अद्वार करने की सुविधा भी प्राप्त करवाते थे। बंगाल में जगत सेठ परिवार बैंकर के रूप में यही करता था। सराफ ने भी मुद्रा विनिमय और कर्ज के लिए इन व्यापारियों की सहायता ली। पहले कंपनी को टकसाल का अधिकार प्राप्त नहीं था परंतु जैसे ही राजनीतिक शक्ति अंग्रेजों के पास आई, वैसे ही भारतीय व्यापारियों के बैंकिंग संबंधी कार्य समाप्त हो गए। वे व्यापारी जो कभी कंपनी को सूती वस्त्र खरीदकर देते थे उनका स्वतंत्र अस्तित्व अब समाप्त हो गया। अंग्रेज प्रत्यक्ष एजेंसी व्यवस्था के माध्यम से स्वयं सामान खरीदने लगे व्यापारिक गतिविधियाँ अंग्रेजों के अधीन हो गई और भारतीय व्यापारियों को अधीनस्थ स्थिति में रहकर कार्य करना पड़ा।

18वीं सदी के प्रारंभिक दिनों में भारतीय अर्थव्यवस्था की आधार इकाई ग्राम ही थी। जो स्वावलंबी तथा स्वशासी ही नहीं अपितु अपनी आवश्यकताओं के लिए सभी पदार्थों का उत्पादन कर लेते थे। इसका राज्य से संबंध केवल कर देने तक ही सीमित होता था। वंश तथा शासक तो परिवर्तित होते ही रहते थे परंतु ग्राम्य समाज सदैव की भांति मंद गति से चलता रहता था। एशियाई समाज का यह अपरिवर्तनशील रूप ही था। जिसके विषय में यूरोपियों ने कहा था कि 'यह नश्वर संसार में भी अनश्वर' है। ये ग्राम्य समाज एक ओर आर्थिक तथा सामाजिक दायित्व में मुख्य भूमिका निभाते थे तो दूसरी ओर प्रवाहहीनता के लिए भी उत्तरदायी थे।

नगरों में हस्तशिल्प का स्तर बहुत विकसित हो चुका था। भारतीय माल की संसार की सभी मंडियों में मांग थी। ढाका, अहमदाबाद, मसूली पट्टनम का सूती कपड़ा आगरा, गुजरात तथा लाहौर का रेशमी माल, लाहौर तथा आगरा के ऊनी शाल, गलीचे, सोने चांदी के आभूषण इत्यादि की भारत में तथा बाहर बहुत मांग थी।

स्थानीय तथा विदेशी व्यापार के कारण व्यापारी पूंजीपतियों का विकास हुआ, बैंकिंग प्रणाली हुण्डियों इत्यादि का प्रचलन होने लगा था। इससे व्यापार में वृद्धि हुई इस तरह 17वीं और 18वीं सदी में भारतीय व्यापार के विकास से यह लगता था कि पूंजीवाद के शीघ्र उत्थान के लिए परिस्थितियां विद्यमान थीं परंतु कुछ प्रतिबंधों के कारण जैसे कि सामंतशाही वर्ग का प्रसार जो कि कृषकों के बचाए हुए धन का दुरुपयोग करते थे तथा अभिजात वर्ग की संपत्ति का सरकार द्वारा जब्त करना लोगों में बचत की भावना तथा प्रवृत्ति का अभाव तथा इन बचतों का सदुपयोग करना। राजनैतिक स्थिरता का न होना आदि के कारण आधुनिक विधि आर्थिक विकास नहीं हो सकता और एक बड़े व्यवधान के रूप में यूरोपीय व्यापारिक कंपनी के आगमन के फलस्वरूप आर्थिक निष्क्रियता ने बाधा के रूप में कार्य किया।

18वीं शताब्दी में भारत का विदेशी व्यापार और भी विकसित हुआ। अंग्रेजों ने अपने मुनाफे के लिए इस व्यापार का विकास किया, परंतु इससे प्राप्त होने वाला लाभ केवल अंग्रेजों को मिला। इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति शुरू हो चुकी थी और वहां सूती वस्त्र उद्योग का प्रसार हो रहा था। ऐसे में भारतीय सूती वस्त्रों के आयात पर इंग्लैंड में रोक लगा दी गई इसके साथ यह महत्वपूर्ण तथ्य भी जुड़ा है कि अंग्रेजों के सत्ता की स्थापना से पहले विदेशी व्यापार से जो मुद्रा भारत को प्राप्त होती थी, वह अब बंद हो गई। ईस्ट इंडिया कंपनी भारतीय धन की निकासी की प्रक्रिया 18वीं शताब्दी से ही शुरू हो गई। इतना ही नहीं, इंग्लैंड के लाभ के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी ने यहां के कारीगरों की उत्पादन प्रक्रिया पर भी दबाव डाला अंग्रेजों ने सूती हथकरघा उद्योग में लगे, उद्योग-धंधों के नष्ट करने की प्रक्रिया शुरू कर दी। इस प्रकार 18वीं शताब्दी की भारतीय अर्थव्यवस्था में जो मूलभूत परिवर्तन आया वह विदेशी सत्ता से जुड़ा हुआ था।

सामाजिक और सांस्कृतिक दशा

18वीं शताब्दी का भारतीय समाज विभिन्न परंपराओं और मान्यताओं से बंधा हुआ था। भारतीय समाज में अंग्रेजी शासन की स्थापना के बाद कुछ नए वर्गों का जन्म अवश्य हुआ। सी.ए. बेली ने ऐसे तीन वर्गों का उल्लेख किया है-

1. प्राचीन कुलीन वर्गों ने अपनी स्थिति को और अधिक मजबूत बनाने के लिए जमीन पर अपना अधिपत्य स्थापित किया और वे जमींदार बन गए।
2. मुसलमानों और हिंदुओं में अनेक व्यापारी ईस्ट इंडिया कंपनी के साथ व्यापार और वित्तीय गतिविधियों में भागीदार बन गए। इससे उन्होंने अपनी सामाजिक स्थिति सुधारी।
3. ग्रामीण स्तर पर स्थानीय कुलीन वर्गों ने जमीन पर अपने अधिकार को और भी मजबूत कर लिया। जब अंग्रेजों ने स्थायी बंदोबस्त लागू किया तो यह व्यवस्था परंपरागत जमींदारों के साथ ही लागू की गई, परंतु अनेक जमींदार भूमिकर देने में असमर्थ रहे इस कारण उनकी जमीनें नीलाम कर दी गईं। इनको खरीदने वाले नए जमींदार शहरों में रहते थे।

इस प्रकार अठारहवीं शताब्दी के समाज में वर्ग संरचना की प्रक्रिया देखी जा सकती है। इसी के साथ यह भी देखा जा सकता है कि कई परिवार और समुदाय अपना सामाजिक स्तर सुधारने में सफल रहे। एम.एन. श्रीनिवास ने इसे 'संस्कृतीकरण' की प्रक्रिया कहा है। इससे यह सिद्ध होता है कि भारतीय समाज जड़ नहीं था। सी.ए. बेली ने यह बताया है कि 170 तक वे वाणिज्यिक परिवार, जिन्होंने कंपनी के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किए थे सामाजिक स्तर पर सम्मान प्राप्त कर रहे थे। परंतु कालांतर में शासक और शासित वर्गों के बीच का अंतर स्पष्ट होने लगा। अंग्रेज अपनी जातीय श्रेष्ठता में विश्वास रखते थे इस कारण भारतीयों और उनके बीच वैवाहिक संबंध स्थापित होने या सामाजिक स्तर पर घनिष्ठ संबंध स्थापित होने की संभावना बहुत ही कम थी। वास्तव में मद्रास और मालाबार के तटीय क्षेत्रों में यह देखा गया कि जिन अंग्रेजों ने भारतीयों के साथ विवाह किए थे उनकी संतानों को भारतीयों और अंग्रेजों द्वारा हेय माना गया।

हिंदु समाज वर्णव्यवस्था और अनेक जातियों पर आधारित था। मुसलमानों में भी सामाजिक स्तर पर विभेद था। हिंदू धर्म में मूर्ति पूजा, जादू-टोने और अनेक कुरीतियों को बोलबाला था। इसी तरह इस्लाम धर्म में भी अनेक अंध विश्वास घर कर चुके थे। इसके बावजूद यह देखा गया कि जनसंस्कृति सशक्त थी और धर्म के आधार पर हिंदुओं और मुसलमानों के बीच झगड़े नहीं होते थे।

स्त्रियों का समाज तथा गृह में मान तो था परंतु समानता की वह भावना नहीं थी जैसी कि आज हम समझते हैं। मालाबार तथा कुछ अन्य क्षेत्रों को छोड़कर समाज मुख्यतः पितृप्रधान था तथा घर में पुरुष का ही बोलबाला था। यद्यपि कुछ ऐसी हिंदु तथा मुसलमान स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जिन्होंने राजनीति प्रशासन तथा विद्या के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परंतु प्रायः स्त्री का समाज में उसका न्यायपूर्ण स्थान नहीं दिया जाता था। दहेज प्रथा का प्रचलन दिखता है। हिन्दु तथा मुसलमान स्त्रियाँ पर्दा करती थीं। यद्यपि बाहर काम करने वाली स्त्रियाँ प्रायः ऐसा नहीं कर पाती थीं। राजवंशों, बड़े जमींदारों तथा धनाढ्य घरों में बहुपत्नी प्रथा भी प्रचलित थी। परंतु साधारण लोग एक विवाह ही करते थे। उत्तर प्रदेश तथा बंगाल के कुलीन घरानों में बहुपत्नी प्रथा का रूप बहुत भीषण था। द्विजों में विधवा विवाह प्रायः नहीं होता था। आश्चर्य की बात है कि पेशवाओं ने विधवा के पुनर्विवाह पर पतदाम नामक एक कर भी लगाया था।

भारतीय शिक्षा का उद्देश्य संस्कृति का संरक्षण नहीं था। अपने-अपने वर्ग, कुल तथा मर्यादा के अनुसार व्यासायिक प्रशिक्षण प्राप्त करने का भी चलन था जिससे लोगों में विशिष्टता आ जाती थी। हिंदुओं तथा मुसलमानों में शिक्षा धर्म से संबंधित थी।

सांस्कृतिक चेतना का मुख्य प्रतीक स्थानीय भाषा का विकास था। 18वीं सदी में पंजाबी, हिन्दी, गुजराती, बंगला, उर्दू और अन्य स्थानीय भाषाओं का विकास हुआ। इस काल में गद्यात्मक साहित्य का विकास नहीं हुआ। अधिकतर साहित्य पद्यात्मक शैली में लिखा गया। इसी के साथ ये भाषाएँ स्थानीय स्तर पर जन संपर्क का सशक्त माध्यम बनीं। भाषा का विकास और लेखन शैली पर भक्ति और सूफी साहित्य तथा परंपराओं का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। काव्य में प्रेम भावना अधिक प्रधान हो गई। सिंध में शाह अब्दुल लतीफ, पंजाब में वारिस शाह और दक्षिण में त्यागराज ने अपनी कविताओं में इस भावना को स्पष्ट किया। वारिस शाह रचित 'हीर रांझा' केवल एक सांसारिक प्रेम कहानी को ही नहीं दर्शाती है, अपितु सूफी आध्यात्मिकता को भी प्रकट करती है।

इस शताब्दी में रचनाओं पर उस सामाजिक संकट का भी प्रभाव पड़ा जो मुगल साम्राज्य के पतन के साथ दृष्टिगोचर हुआ था। उर्दू भाषा के विकास और साहित्य में यह प्रभाव विशेष रूप से देखा गया। कविताओं में इस बात पर दुःख प्रकट किया गया कि पहले से चली आ रही मान्यताओं एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का पतन हो रहा है। मान्यताओं एवं सामाजिक प्रतिष्ठा का पतन हो रहा है। पटना निवासी उर्दू शायर रसिक ने अपनी शायरी में यह अफसोस प्रकट किया कि मुगलकालीन अभिजात वर्ग इतना अधिक निर्धन हो गया था कि वह मिट्टी के घड़े खरीदने की स्थिति में भी नहीं था। दिल्ली के शायर सौदा ने मुगलकालीन पतन के संदर्भ में शासकीय परिवारों की गरीबी का वर्णन करते हुए दुःख प्रकट किया।

जब कला तथा साहित्य को दिल्ली में संरक्षण मिलना बंद हो गया तो इससे जुड़े लोग नवीन स्थापित राज्यों (हैदराबाद, लखनऊ, मुर्शिदाबाद, जयपुर इत्यादि) की ओर चल पड़े। आसफद्दौला ने 1784 ई. में सुप्रसिद्ध इमामबाड़ा बनवाया इस भवन का महत्व इस संदर्भ में है कि इसमें स्तंभों का प्रयोग नहीं किया गया है। सवाई जयसिंह ने दिल्ली, जयपुर आदि में नगरों में 5 वैध शालाएँ बनवाई। रणजीत सिंह ने स्वर्ण मंदिर में संगमरमर लगवाया तथा उसके कलश पर स्वर्णपत्र मढ़वा दिया।